रॉन्ग, आईईईई पावर एन्जीनियरिंग रिव्यू, 10, 27–31.
http://arxiv.org/ftp/physics/papers/0702/0702155.pdf

श्रैंक, एम.ए.: 2004, 'गैलिलियो वर्सेस ऐरिस्टॉटल ऑन फ्री फॉलिंग बॉडीज़', लॉजिकल ऐनालिसिस ऑफ फिलॉसोफी, अंक 7: हिस्ट्री ऑफ फिलॉसोफी ऑफ नेचर
http://philsci_archive.pitt.edu/archive/00002524/01/Galileo_vs_Aristotle_on_Free_Falling_Bodies.pdf

द गैलिलियो प्रॉजेक्ट: ऑन मोशन
http://galileo.rice.edu/sci/theories/onšmotion.html से हासिल किया गया।

द मैप प्रॉजेक्ट: द केस ऑफ फॉलिंग बॉडीज़ प्रॉजेक्ट,
http://ppp.unipv.it/map/pagine/intro_00.htm से हासिल किया गया।

द फिज़िक्स हाइपरटैक्स्टबुक: फॉलिंग बॉडीज़,
http://hypertextbook.com/physics/mechanics/falling

थिंकक्वैस्ट: गैलिलियो,
http://library.thinkquest.org/29033/history/galileo.htm

यूनिवर्सिटी ऑफ हवाई: द नेचर ऑफ फिज़िकल साइन्स : द फर्स्ट साइन्टिस्ट, प्रोग्राम 13, लैसन 2.5.
http://honolulu.hawaii.edu/distance/sci122/Programs/p13/p13.html से हासिल किया गया।

यूनिवर्सिटी ऑफ हवाई: द नेचर ऑफ फिज़ीकल साइन्स : द न्यू फिज़िक्स, प्रोग्राम 14, लैसन 2.6.
http://honolulu.hawaii.edu/distance/sci122/Programs/p14/p14.html से हासिल किया गया।

वैस्टवे, एफ. डब्ल्यू.: 1929, साइन्स टीचिंग, ब्लैकी एण्ड सन, लन्दन।

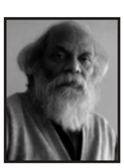
विकीपीडिया: गैलिलियो गैलिली,
http://en.wikipedia.org/wiki/Galileo_Galilei से हासिल किया गया।

यूट्यूब.कॉम: द हैमर एण्ड द फैदर,
http://www.youtube.com/watch?v+4mTsRZEMwA

***कमल महेन्द्रू** वैज्ञानिक सोच और बहुसांस्कृतिक सन्दर्भों में विज्ञान शिक्षा पर शोध करते हुए स्कूल ऑफ ऐजुकेशन, न्यू साउथ वेल्स विश्वविद्यालय, सिडनी में दो साल का अध्ययनकाल पूरा करके आए हैं। वे किशोर भारती (होशंगाबाद), एशियन वर्कर्स डैवेलपमैन्ट इन्सटीट्यूट (राउरकेला), एकलव्य (भोपाल), विद्या भवन ऐजुकेशन रिसोर्स सेन्टर (उदयपुर), और छत्तीसगढ़ ऐजुकेशन रिसोर्स सेन्टर (रायपुर) के साथ नज़दीकी तौर पर जुड़े रहे हैं। उन्हें विज्ञान तथा गणित के शिक्षण, शिक्षा में नए परिवर्तनों एवं ग्रामीण विकास के क्षेत्र में काम करने का तीस सालों से भी ज़्यादा का अनुभव है। उनसे इस पते पर सम्पर्क किया जा सकता है : kmahendroo@yahoo.com*

स्कूली शिक्षक : परिवर्तन के वाहक

विजय वर्मा



भारत में स्कूली शिक्षा में सुधार के लिए किए गए प्रयोगों, जैसे कि होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम, ने यह दर्शाया है कि अच्छे स्तर की शिक्षा प्रदान करने के अभिक्रम में शिक्षक अति महत्वपूर्ण होते हैं। जब भी कोई शिक्षक सुधार के विचार को मन से अंगीकार कर लेता है तो सुधारों के सफल होने की सम्भावना होती है। पर जब भी शिक्षक का रवैया प्रतिकूल या उदासीन होता है तो सुधार निश्चित रूप से असफल हो जाते हैं।

पाठ्यक्रम विकास या पाठ्यपुस्तकें तैयार करने की सामान्य प्रक्रिया बेहद केन्द्रीकृत गतिविधि होती है। खासतौर पर जब प्रक्रिया एनसीईआरटी जैसे संगठनों के नेतृत्व में की जा रही हो, ऐसी जिसमें चीज़ों के ऊपर से नीचे उतरने के सीढ़ी जैसे ढाँचे वाला मार्ग अपनाया जाता है। ऐसा माना जाता है कि अधिकांश बुद्धिमत्ता ऐसे संगठनों द्वारा गठित 'विषय विशेषज्ञों' के समूह या पैनल में होती है। इनमें कुछ थोड़े से ऐसे शिक्षकों की मामूली भागीदारी भर होती है जिन्हें मुख्य रूप से उनके उपलब्ध होने की सहूलियत के कारण चुन लिया जाता है। ऐसे प्रयास आमतौर पर कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों को नज़रअन्दाज़ कर देते हैं। एक पाठ्यक्रम (जिसके सफलतापूर्वक लागू किए जा सकने की सम्भावना हो) को विकसित करने में हमें विषय की माँगों के प्रति तो संवेदनशील होना चाहिए। जिन बच्चों के लिए इसे बनाया जा रहा हो उनके विचारात्मक विकास को, स्कूल में उपलब्ध संसाधनों को, और सबसे महत्वपूर्ण, उन शिक्षकों की तैयारी को भी ध्यान में रखना चाहिए जिन्हें वास्तव में शिक्षण का कार्य करना है। इसे करने का सिर्फ़ एक ही तरीका है कि इस ज़िम्मेदारी के लिए गठित समूह उस क्षेत्र के शिक्षकों को इस प्रक्रिया के केन्द्रीय पात्र के रूप में स्वीकार करे। समूह को इस कदर स्वयं ही हर बात का निदान बतानेवाला रवैया भी नहीं अपनाना चाहिए कि शिक्षकों को शिक्षण प्रक्रिया में उनके अपने दृष्टिकोण और अनुभव को सम्मिलित करके पाठ्यक्रम से अपनत्व बनाने का मौका ही न मिले।

जो हमने अभी कहा है उसे समझने के लिए कोई बहुत बड़े प्रयास की ज़रूरत नहीं है। तो प्रश्न यह उठता है कि इन सिद्धान्तों का पालन के बजाय उल्लंघन क्यों ज़्यादा होता है? इस छोटे से लेख के बाकी हिस्से में हम ऐसा होने के पीछे के कारणों की पड़ताल करने की कोशिश करेंगे।

एक प्रमुख कारण जिसकी तरफ हमने इशारा किया है वह है व्यवस्था की नियंत्रण बनाए रखने और कोई महत्वपूर्ण विकेन्द्रीकरण न होने देने की प्रवृत्ति। एनसीईआरटी द्वारा नेशनल करीकुलम फ्रेमवर्क (एनसीएफ) 2005 बनाने और फिर इस दस्तावेज़ को आधार बनाकर पाठ्यक्रम व स्कूली पाठ्यपुस्तकें विकसित करने की हालिया गतिविधि पर गौर करें। पूरे देश में विचार–विमर्श का जाल फैलाने के प्रयास में देश भर से विशेषज्ञों को लाया गया। मेरे खयाल से इस प्रयास के कहीं बेहतर नतीजे मिलते अगर इसे दिल्ली में केन्द्रीकृत न किया गया होता। बेहतर होता शुरुआत के लिए चार क्षेत्रीय केन्द्र चुने जाते। और फिर एक बार राष्ट्रीय रूपरेखा तैयार हो चुकने के बाद इन केन्द्रों को पर्याप्त स्वायत्तता से काम करने दिया जाता। इससे न केवल पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के चार स्वतंत्र सेट मिलते, जो खुद एनसीएफ 2005 में वर्णित वांछनीय लक्ष्यों में से एक है, बल्कि इससे क्षेत्रीय सामर्थ्य को बढ़ावा मिलता और विकेन्द्रीकरण को प्रोत्साहन मिलता। इससे पाठ्यक्रम विकास और पाठ्यपुस्तक लेखन की पूरी प्रक्रिया में, वास्तविक स्कूल शिक्षकों की महती भागीदारी की सम्भावनायें पैदा होतीं। इस सोच के विरुद्ध एक तर्क यह दिया जाता है कि इस प्रयास को सार्थक बनाने के लिए पर्याप्त क्षेत्रीय क्षमताएँ उपलब्ध नहीं हैं। पर यह तो चूज़े और अण्डे वाली शास्त्रीय समस्या है। क्षेत्रीय क्षमताएँ कैसे विकसित होंगी जब तक उन्हें विशेष रूप से प्रोत्साहित नहीं किया जाएगा?

कुछ हद तक, यह मानना पड़ेगा कि विभिन्न सामाजिक और शैक्षिक कारणों की वजह से स्कूली शिक्षकों का औसत सामर्थ्य वह नहीं है जो होना चाहिए। तो हम इस बारे में क्या कर सकते हैं? आजकल यह लगभग एक स्थापित तथ्य है कि वे लोग शिक्षक बन जाते हैं 'जो कुछ भी बेहतर नहीं कर सकते।' स्कूली शिक्षकों का पेशेवर समूह (काडर) विकसित करने के काम में सरकार की तरफ से भी कोई मदद नहीं मिलती। क्योंकि सरकार अतिरिक्त–शिक्षकों की भरती जैसी नीतियों का आक्रामक रूप से पालन कर रही है। ये नीतियाँ मूलत: शिक्षा प्रदान करने की लागत को कम करने और साथ ही शिक्षक संघों की शक्तियों पर नियंत्रण लगाने के उद्देश्य से बनाई गई हैं। इस सब में यह भुला दिया जाता है कि स्कूली शिक्षा के स्तर में तब तक सुधार नहीं आएगा जब तक कि स्कूली शिक्षकों के स्तर में सुधार न हो। यह करने का एकमात्र तरीका है कि उनके काम करने की स्थितियों को (और यहाँ मेरा मतलब केवल तनख्वाह से नहीं है) अधिक आकर्षक बनाया जाए, ताकि प्रतिभावान लोग इस व्यवसाय के प्रति आकर्षित हों। इसके लिए स्कूलों में बेहतर सुविधाएँ उपलब्ध कराने की ज़रूरत होगी। शिक्षकों के लिए काम करने का बेहतर वातावरण, बेहतर परिवेश, बेहतर बुनियादी ढाँचा, काम करने की बेहतर दशाएँ, बेहतर पुस्तकालय और प्रयोगशालाएँ ज़रूरी होंगी। साथ ही ऐसे सक्रिय कदम उठाने होंगे जिनसे शिक्षकों को सरकारी शिक्षा विभागों में छोटे से छोटे कर्मचारियों के व्यापक स्तर पर फैले आधिपत्य से मुक्त किया जा सके।

स्कूलों में स्तरीय शिक्षा प्रदान करने में शिक्षकों की केन्द्रीय भूमिका की बात करने का आजकल सेमिनार सर्किटों में चलन–सा हो गया है। यदि इसे व्यवहार में लाया जा सके तो इससे न केवल स्कूली शिक्षकों की शैक्षिक क्षमता के स्तर में सुधार आएगा बल्कि शिक्षण के प्रति उनकी प्रतिबद्धता भी बढ़ेगी। स्कूलों में शिक्षकों के अनुपस्थित रहने की बढ़ती घटनाएँ चिन्ता का विषय है। इस पर शीघ्र ध्यान देने की ज़रूरत है। मैं मानता हूँ कि केवल शिक्षकों की जवाबदेही के लिए कानून बनाकर इस समस्या को सुलझाना बहुत मुश्किल है। पर यह भी स्पष्ट है कि कोई कदम तो उठाना ही पड़ेगा, ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि शिक्षक नियमित तौर पर स्कू ल में उपस्थित रहें। पर केवल इतने से काम नहीं चलेगा। वे शिक्षक, जिन्हें स्कूल से अनुपस्थित रहने का कोई खेद नहीं है, सिर्फ इसलिए पढ़ाना शुरू नहीं कर देंगे कि सरकार ने उनके लिए कानून बना दिया है। छात्रों के प्रदर्शन के लिए उनके शिक्षकों को भी जवाबदेह ठहराने का विचार मन में आ सकता है। पर आप ऐसी व्यवस्था में यह कैसे कर सकते हैं जिसमें निचली कक्षाओं में मूल्यांकन करने पर कम से कम ज़ोर दिया जाता है। निचली कक्षाओं में ही असफलता के आघात से बच्चों को बचाने की आड़ में सबसे अधिक नुकसान होता है।

साफ तौर पर बात मूल्यों पर आकर टिक जाती है कि व्यक्ति को बिना किसी विवशता के अपनी पूरी क्षमताओं के साथ अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। हमारे समाज में व्यावसायिक प्रतिबद्धताओं के प्रति जवाबदेही में लापरवाह रवैए के बढ़ते हुए प्रमाण मौजूद हैं। शिक्षकों का अनुपस्थित रहना तथा अच्छे प्रदर्शन में कमी इसका सिर्फ एक उदाहरण है। इसका एक सम्भावित कारण यह हो सकता है कि पारिवारिक परम्पराओं के लगातार टूटने और आधुनिकता के हमलों के फलस्वरूप मध्यमवर्गीय परिवारों में बढ़ती हुई बुद्धिहीन व्यावसायिकता के कारण घर पर अच्छे

संस्कार ग्रहण करने के मौके कम होते जा रहे हैं। बच्चों के लिए अच्छे मूल्य सीखने का दूसरा स्रोत स्कूल हो सकता है। लेकिन वहाँ भी स्थिति बिगड़ जाती है। इसके पीछे एक कारण तो बच्चों के सामने शिक्षकों का अक्सर खराब उदाहरण पेश करना है, और दूसरा है बहु–सांस्कृतिक एवं बहु–धार्मिक समाज में औपचारिक तौर पर नैतिकता और मूल्यों की बातें सिखाने के साथ जुड़ी समस्याएँ। आप किसकी नैतिकता और किसके मूल्य सिखाते हैं? और चूँकि ऐसे प्रश्नों की जड़ें पारम्परिक रूप से धार्मिक उपदेशों में रहीं हैं। किसी के भी पास इनके सबके द्वारा स्वीकार्य उत्तर नहीं रहे हैं, और इसलिए हम अन्ततः कोई भी उत्तर नहीं सिखा पाए हैं। मेरा मानना है कि समय आ गया है अब ऐसे उपदेशों को धर्म के बाहर तलाशा जाए। साथ ही इस तरह के विषयों को स्कूल में पढ़ाने के लिए कारण और तर्क से बना एक आधार विकसित किया जाए। आशा है कि ऐसे पाठ्यक्रम पढ़ाने से और ऐसे विचार–विमर्शों से शिक्षक और जनसाधारण, दोनों में ही बदलाव आएगा जिससे पेशे और उत्तरदायित्व के प्रति प्रतिबद्धता बढ़ेगी, और इसी की सबसे ज़्यादा ज़रूरत है।

संक्षेप में, इस छोटे से लेख में हमारा तर्क यह रहा है कि स्कूलों में अच्छी शिक्षा व्यवस्था होने के लिए अच्छे और प्रतिबद्ध शिक्षकों का होना अत्यावश्यक है। पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के विकास में शिक्षकों की भूमिका बढ़ना चाहिए और इसके लिए इन प्रक्रियाओं का विकेन्द्रीकरण ज़रूरी है। हमें ज़्यादा गुणी लोगों को इस व्यवसाय की ओर आकर्षित करना चाहिए और इसके लिए हमें न केवल तनख्वाहें बढ़ाना चाहिए बल्कि शिक्षकों के काम करने की दशाओं और उन्हें उपलब्ध सुविधाओं में भी सुधार लाना चाहिए। पर, इस सबका भी कोई अर्थ नहीं निकलेगा जब तक हम इसके साथ शिक्षकों की जवाबदेही भी नहीं बढ़ाते जिसके लिए न केवल वैधानिक प्रक्रियाएँ ज़रूरी होंगी, बल्कि हमारी स्कूली व्यवस्था द्वारा शिक्षकों और छात्रों, दोनों में ही मूल्यों का उचित बोध भी जगाना पड़ेगा।

विजय शंकर वर्मा दिल्ली विश्वविद्यालय में डीन (योजना) व भौतिक शास्त्र के प्राध्यापक रहे हैं। सेवानिवृति के बाद वे वर्तमान में अम्बेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली में सलाहकार (योजना) हैं। उन्होंने होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम में दिल्ली विश्वविद्यालय के शैक्षिक समूह की भागीदारी का समन्वयन किया है। उनसे इस पते पर सम्पर्क किया जा सकता है: varma2@gmail.com

---

विज्ञान का इतिहास

समय के झरोखे से विज्ञान की यात्रा

नन्दिता नारायणसामी



विज्ञान के इतिहास के बारे में सोचते हुए, जो पहली चीज़ मेरे दिमाग में उभरी, वह थी बच्चों के एक स्वास्थ्यवर्धक पेय पदार्थ का विज्ञापन। विज्ञापन में कहा गया है कि उस उत्पाद में प्रकृति और विज्ञान एक साथ मौजूद हैं, और इसलिए वह पोषक तत्वों के पूरक के तौर पर श्रेष्ठ है! वह कम्पनी हमें यह विश्वास दिलाती है कि प्रकृति इसके जटिल पोषक तत्व प्रदान करती है और विज्ञान इसके खनिज प्रदान करता है। जाहिर तौर पर इस विज्ञापन के बारे में, यदि हम तार्किक दृष्टि से सोचें तो निष्कर्ष यह निकलता है कि खनिज प्रकृति का हिस्सा नहीं हैं। मेरी अज्ञानता को क्षमा करें। मैं अभी तक यह सोचती आई थी कि विज्ञान हमेशा से प्रकृति की कार्यप्रणाली का अध्ययन या उसकी जाँच करने का साधन रहा है। यदि हम यूरोपीय और एशियाई, दोनों साहित्यों में पीछे मुड़कर देखें, तो पाते हैं कि प्रकृति से अभिभूत होने के भाव के साथ उसकी शक्ति को समझने और उसको इस्तेमाल करने की मानव जाति की तलाश के बीच निकट सम्बन्ध काफी स्पष्ट दिखाई देता है। इस पूरे प्रसंग ने मुझे विज्ञान को लेकर हमारी समझ के बारे में आत्मविश्लेषण करने पर मजबूर कर दिया, साथ ही यह सोचने पर भी मजबूर किया कि समय के साथ यह दृष्टिकोण कैसे बदला है।

विज्ञान को अँग्रेज़ी में साइन्स कहते हैं। साइन्स लैटिन शब्द 'साइंशिया' से निकला है जिसका अर्थ है ज्ञान। भौतिक चीज़ें कैसे काम करती हैं, विज्ञान यह खोजने का और इसके बारे में मानवीय समझ को विकसित करने का प्रयास है। विज्ञान, वर्तमान में मौजूद दुनिया की जाँच–पड़ताल करने के लिए, पाँच इन्द्रियों के द्वारा किए गए भौतिक दुनिया के निरीक्षण से प्राप्त ज्ञान का